THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180768
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.6 / K 17 A   Accession No. G.H. 373

Author कपिल, पांडेय ।

Title आभास । 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

आभास

(गीत-संग्रह)

कवि
श्री पांडेय कपिल

प्रकाशक
चाणक्य प्रकाशन
पटना—४

प्रकाशक : चाणक्य प्रकाशन, पटना–४

Checked 1965

चित्रशिल्पी : श्री पांडेय सुरेन्द्र

कवि द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : दिसम्बर १९५६ ई०

मूल्य : डेढ़ रुपये

मुद्रक : कालिका प्रेस, पटना—४

आवरण-मुद्रक : नावेल्टी कलर वर्क्स, पटना–४

पूर्वाभास

विकास का परिमाण नहीं होता। इसी प्रकार विचार-धारा भी, न तो काल और सीमा के बन्धन में डाली जा सकती है, न उसका अन्त होता है। परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में विचार-धारा सदैव काम करती रहती है। यह नैरन्तर्य ही उसकी विशेषता है। साधना की समिधाएँ और चिन्तन की चिनगारियाँ जिस परिनिष्पत्ति को साकार करती हैं, वही विभूति कला की सर्वाङ्गपूर्णता की संज्ञा पाती है। इस विभूति का सौन्दर्य शाश्वत होता है। व्याकरण के पूर्ण विराम के बाद भी अनेक पंक्तियाँ आती हैं और लेखनी का धनी अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के साथ अधिक-से-अधिक ऊपर उठता जाता है।

आज का पराक्रमी आलोचक जहाँतक पहुँच सका है और वह जो कुछ देखने लगा है, मात्र वही उल्लेख्य एवं विवेच्य है, ऐसा सोचना भी अहितकर होगा। आज के हिंदी-साहित्य में बहुत कुछ ऐसा भी है जिसका उचित मूल्यांकन निकट भविष्य में असम्भव है। यह सही है कि अभी स्वर में स्वर मिलाकर अगली पंक्ति में नाम लिखानेवालों का बोलबाला है। परन्तु अधिक भव्य वह दृश्य है, जहाँ साधना के सातत्य की वेदी पर साँसों का दीप जलाकर उसकी लौ से साहित्य-

निर्माण करनेवाले कलाकार भविष्य की रिक्त गोद भरने के लिए नये-नये चाँद-सूरज गढ़ने में तल्लीन हैं।

सूर, तुलसी और मीरा की चलायी हुई गीत-परम्परा रुकी नहीं, यह गर्व की बात है। युग-परिवर्त्तन के साथ इस परम्परा का भी स्वर बदलता रहा है, परन्तु उसकी परिनैष्ठिक कला क्षीण नहीं हो सकी। 'प्रसाद' के गीत देवता की मूर्त्ति के सामने जलनेवाले दीप के समान हैं। 'निराला' के गीत धुआँती हुई आग के सदृश हैं। दीप की कम्पित लौ से निकलनेवाली सुगन्ध ही महादेवी का गीत है। प्रकाश की सुगन्ध से देवता की वेदिका को अनुरंजित करनेवाला दीपक उतना ही पुण्य-मधुर होता है जितनी उसे उच्छ्वसित और पुलकित करनेवाली अग्निहोत्र की ज्वालवाहिनी धूम्रशिखा !

अति आधुनिक काल के पूर्व, युगवाद की आँधी प्रबल वेग से बहने लगी थी, परन्तु कतिपय यशस्वी गीतकारों की साधना का स्नेह पाकर हिंदी-गीतों का दीप अपनी अक्षुण्ण ज्योति के साथ जलता रहा। यदि कोई यह कहे कि इन गीतकारों की देन पिछले खेवे के गीतकारों की देन के बराबर नहीं है, तो मेरा उत्तर होगा कि इन सुकवियों की कला ने युग-सन्धि की पुकार को वीणा की झंकार में बदलकर जिस नवीन चेतना-लोक का निर्माण किया, उसमें भविष्य की आँखों के तन्द्रिल स्वप्न चाँदी की लहरों पर तैरते हुए श्वेतपद्म की भाँति अपने अशेष वातायन खोलने लगे हैं और यही उनकी सफलता है। यदि यहाँ बिहार का उल्लेख करना पड़े तो कहूँगा कि रुद्र, हंसकुमार तिवारी, जानकीवल्लभ आदि इस परम्परा के कुछ ऐसे वर्तमान स्वनामा कलाकार हैं, जिनकी प्रतिभा की वरेण्यता निर्विवाद है।

'आभास' का कवि अपने इन अग्रज कवियों के सामने हृदय में श्रद्धा और स्वर में विश्वास लेकर उतरता है। अपनी चारों ओर बिखरी हुई 'ज्योतिर्मयता' में वह मंजिल की राह भी देख लेता है और उसे छू लेने का आभास भी पा लेता है, क्योंकि उसके

"रवि-चुम्बित जीवन-सरोज को
चेतनशील विकास मिल गया !"

(पृष्ठ ६२)

यह मार्के की बात है कि कवि को यह आभास २५ में से २३ गीत सजा लेने के बाद मिला। निष्ठा और विश्वास के साथ साधना में लीन रहने पर ही ऐसा अनुभव होता है कि

"जीवन्त हो उठी जड़ता में निगड़ित संसृति,
गति पाकर जीवन की लय को उल्लास मिला !"

(पृष्ठ ६४)

और यही सत्य झंकार-भरे शब्दों में व्यक्त होकर 'आभास' के परिधाय और परिन्यास को आकर्षणमय बना देता है।

पुस्तक में कुल २५ मर्मस्पर्शी गीत संगुम्फित हैं, जिनमें से अधिकांश करुण-रस से ओतप्रोत हैं। करुण-रस सबसे प्रिय और सबको प्रिय होता है। सबके जीवन में सुख की घड़ियाँ भले ही न आई हों, लेकिन दर्द ही एक ऐसा मसीहा है जो हर आँगन में अलक्ष्य चरणों से उतरता है। यदि हृदय ने उसकी पगध्वनि सुन ली तो आँखें भर आईं। और यदि हृदय पत्थर ही बना रहा तो मस्तिष्क ज्वालामुखी बन जाता है, जिसका विस्फोट अनिश्चित नहीं होता।

यदि 'आभास' को एकान्त अनुभूति की बारीक आवाज मान लें तो, ऐसा मेरा विश्वास है, हर व्यक्ति किसी ओर परोक्ष या अपरोक्ष संकेत कर कह उठेगा—

"आते हो तो पाहुन-सा क्या आते हो!
मन को अकूल प्लावन से भर जाते हो!
तुम क्या जानो कि तुम्हारे पद-चिह्नों को
किन फूलों ने कैसे जल से धोया है!
क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था?
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है!!"

(पृष्ठ २१)

यों तो 'आभास' का प्रत्येक गीत मिठास से भरा हुआ है, परन्तु दूसरा और उन्नीसवाँ गीत मुझे बड़े प्यारे लगे। इन गीतों को बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। निम्नांकित पंक्तियाँ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

"सागर स्वप्न तुम्हारे मन का,
जिसकी कोई थाह नहीं है!
और यहाँ ऐसी लाचारी
जाने की ही राह नहीं है!"

(पृष्ठ २६)

"गिरि-प्रपात की जिज्ञासा का
सागर के स्वर में उत्तर दो!"

(पृष्ठ ४४)

"तुम अपने में जिसे जुगोये
रहते हो ज्यों खोये-खोये
नाग बने जगते रहते हो
क्या यह धन इतना प्यारा है?"

(पृष्ठ ४६)

"कोकिल की कूकों पर रीझी न बसन्ती
आ सका न कुसुमाकर उजड़े मधुवन का!
सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे
मैं सधा राग भी गा न सका जीवन का!"

(पृष्ठ ५३)

"सारी रात कटी दृग में तुम निठुर ! न आये !
अब जो तट पर डूब रही है,
प्रिय, मेरी यह नाव वही है,
कहीं तुम्हारा करुणांचल भी हँसा न जाये !"

(पृष्ठ ६०)

पांडेय कपिल के गीतों से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आज से लगभग तीस वर्ष पहले मैंने 'कलेजे के टुकड़े' नामक कविता-पुस्तिका प्रकाशित करायी थी। उस समय यह पुस्तिका अत्यन्त लोकप्रिय थी। 'आभास' के गीतों को पढ़ते-पढ़ते मेरे हृदय में उन दिनों की याद जाग उठी, मैं अपनी कई पंक्तियों को गुनगुनाने लगा और कई बार मेरी आँखें गीली हुईं। संभव है, यह मेरी ढलती हुई अवस्था की पहचान हो। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि 'आभास' के करुण-स्वर में हृदय-तंतुओं को हिला देने की शक्ति है। प्रयोगवादी अंकगणित के जाल में न पड़कर पांडेय कपिल यदि इसी प्रकार मौन साधना में लीन रहे तो निश्चय ही अपने आगे जानेवालों की पंक्ति में स्थान पा लेंगे। ईश्वर उनके अभियान को सफल करे।

३, हार्डिंज रोड, पटना
११-१२-'५६ ई०

—प्रभात

निजी

सन् '४६ से '५६ तक, एक दशक की काव्य-साधना के उपरांत गीतों का यह पुष्पस्तवक लेकर वाणी के मंदिर में मुखर हुआ हूँ। जानता हूँ, मुखरता की कला मुझमें नहीं है, पर इतना कह देना विवशता समझता हूँ कि अपनी निष्ठा में कमी का अनुभव नहीं करता।

कविता-साधना के क्रम में पूज्यवर सुकवि 'रुद्र'जी तथा अग्रजवत् आदरणीय कविवर 'नारायण' जी समय-समय पर अपनी अमूल्य सलाह-इसलाह से मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं। इस पुस्तक की भूमिका हिन्दी के मनीषी कवि श्रद्धेय 'प्रभात'जी ने लिख देने की कृपा की है। मेरी वाणी इन वरीय-त्रय के प्रति अपनी कृतज्ञता किन शब्दों में प्रकट करे, समझ में नहीं आता!

मेरे सहोदर अनुज चित्रमूर्तिशिल्पी पांडेय सुरेन्द्र ने बड़े प्रेम से 'आभास' को कलामय आवरण दिया है तथा मेरे और स्वर्गीय पितामहजी का रेखाचित्र भी प्रस्तुत किया है। एतदर्थ, उसे मेरा हार्दिक स्नेह और शुभाशीष!

हिन्दी-विशेषज्ञ,
बिहार-विधान-परिषद्, पटना
१५ दिसम्बर, १९५६ ई०

—पांडेय कपिल

प्रत्याभास

मुगल जमाने की बात है। यमुना के इस पार शाही शामियाने में दरबारी गवैयों का जमघट था। मलार से दीपक तक की बारीकियाँ और खूबियाँ दिखाई जा रही थीं। इसी बीच उस पार के निभृत निकुंज से एक मर्मभेदी स्वर उठा और कोलाहल के कानों में आ समाया। आलाप रुक गये! तानें ठमक गईं! गमक और मीड़ की मोड़ पर विराम लगा और मूर्च्छना को मूर्छा आ गई!! शास्त्रीय संगीतज्ञ घबड़ाये और बादशाह के कान खड़े हुए! आखिर, यह आवाज कहाँ से आई? कौन गा रहा है उस पार?? किश्तियाँ मँगाई गईं। बादशाह के शाही संगीतज्ञों की पूरी जमात उस पार गई। रेत के टीले पर एक अल्हड़ तरुण सिर के पीछे दोनों हाथ देकर निमीलित नयनों से अब भी उसी तरह गाये चला जा रहा था। राजकीय अभियान का शोरोगुल उसकी बेसुधी भंग नहीं कर सका और न उसके मार्मिक स्वर की प्राण-वेधकता ही रुक पायी। बादशाह भावाकुल हो उठे! उन्होंने धीरे-से बढ़कर तरुण का शरीर स्पर्श किया और पूछा—'तरुण! तुम कौन हो?' तरुण मुस्कुराकर रह गया। बादशाह गम्भीर हो गये। उन्होंने दूसरा प्रश्न किया—'तुम्हारा स्वर इतना हृदयस्पर्शी क्यों है?' तरुण फिर भी चुप रहा। बादशाह हतप्रभ हो गये। उनके सर्वश्रेष्ठ राजगायक आगे आये और बोले—'तरुण! तुम

किसके पुत्र हो ?' युवक ने शांत भाव से तुरत अपने पिता का नाम बताया। पिता का नाम सुनना था कि बादशाह के साथ-साथ सारे शाही गवैयों का सर नतमस्तक हो गया। बादशाह ने चकित होकर पूछा—'क्या तुम उस पिता के पुत्र हो, जिसके पिता के एक आलाप से मेरे पिता फकीर बन जाने पर आमादा हो गये थे ?' युवक की आँखें मुँद गईं और उसने अत्यन्त सहज भाव से कहा— 'जी हाँ ! मैं उन्हीं का पौत्र हूँ।'

द्विवेदी-युग के गण्य-मान्य बिहारी कवियों में स्वर्गीय श्री दामोदरसहायसिंह जी 'कविकिंकर' अपने अनेक काव्य और कविता-संग्रहों से हिन्दी-जगत में पर्याप्त ख्यातिलब्ध हैं। उनके एकमात्र पुत्र श्री पाण्डेय जगन्नाथप्रसाद सिंह जी अपने पैत्रिक दायित्व का निर्वाह, अपनी नानाविध साहित्यिक कृतियों से, निरन्तर करते जा रहे हैं। इन दोनों महानुभावों की साहित्य सेवा का परिचय हिन्दी-जगत् को देने की जरूरत नहीं।

'आभास' के कवि पाण्डेय कपिल, 'कविकिंकर' जी के सुपौत्र और जगन्नाथ बाबू के सुपुत्र हैं। 'आभास' की गीत-कृतियों में अगर हिन्दी-जगत् यमुना के उसपार वाले युवक का आभास देख रहा है, तो यह परम प्राकृतिक और गौरवास्पद है।

जनजीवन-सम्पादक,
बिहार सरकार, पटना-४
१२-१२-५६

—ब्रजकिशोर 'नारायण'

কবি

*

कवि के पितामह
द्विवेदी-युग के कृती साहित्यकार
स्वर्गीय श्री दामोदर सहाय सिंह 'कविकिंकर'

स्वर्गीय पितामहश्री
की
पुण्य स्मृति
में

सूची

क्रम	प्रथम पंक्ति		पृष्ठ
१.	प्रिय, अपने मन की बात बताऊँ तो कैसे ?	...	१७-१८
२.	क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था !	...	१९-२१
३.	आज रह-रह के तुम्हारी याद आती है !	...	२२
४.	नापते निस्सीम लय के पंथ जग के श्वास !	...	२३-२४
५.	अब तो मन की गाँठें खोलो !	...	२५-२६
६.	नयनों के जल-पथ में उमड़ा ज्वार है !	...	२७-२८
७.	स्वप्निल पथ पर	...	२९-३०
८.	नैया तट को छोड़ चुकी है !	...	३१-३२

९. रजनी के सपनों के अम्बुज ... ३३-३४
१०. जैसे आये, वैसे ही जाते ... ३-५३६
११. मुग्ध धरा ! मुग्ध गगन ! ... ३७-३८
१२. गा री पपिही, कजरी धुन में ... ३९-४०
१३. बोझिल पलकों का व्योम ... ४१-४२
१४. जीवन को आलोकित कर दो ! ... ४३-४४
१५. विगल हुआ मन उन्मन-उन्मन ... ४५-४६
१६. दूर तुमसे जा रहा हूँ जा रहा हूँ दूर ! ... ४७-४८
१७. क्या यह मन इतना प्यारा है ! ... ४९-५०
१८. होलिका जली, जले सकल विराग ! ... ५१-५२
१९. सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे ! ... ५३-५४
२०. आँख-मिचौनी की गति-यति में ... ५५-५६
२१. न कह पाते, न सह पाते ... ५७
२२. कैसा यह संगीत रे ! ... ५८
२३. सारी रात कटी दृग में तुम निठुर ! न आये !... ५९-६०
२४. राह मिली ... ६१-६२
२५. खुल गया असित अवगुंठन ... ६३-६४

आभास

१

प्रिय, अपने मन की बात बताऊँ तो कैसे ?

जगता है रह-रह आज
दर्द-सा कुछ मन में;
पगते हैं पागल प्राण
आज अपनेपन में;
नयनों में डूब गये
तिरते मन के बादल;
डूबे मन में बरसात मनाऊँ तो कैसे ?
प्रिय, अपने मन की बात बताऊँ तो कैसे ?

आभास

छन में होता कुछ और,
और ही कुछ छन में;
उस ओर तड़ित, इस ओर—
तड़प मेरे मन में;

बाड़व को तो लहरों से
मैंने दबा लिया;

लहरों से झंझावात दबाऊँ तो कैसे?
प्रिय, अपने मन की बात बताऊँ तो कैसे?

करते थे जो झंकार,
तार वे टूट गये;
यति पर देते जो ताल,
मुरज वे फूट गये;

अब रूठ गये वे गान
मान जो तेरे थे;

संगीतमयी यह रात बिताऊँ तो कैसे?
प्रिय, अपने मन की बात बताऊँ कैसे?

●●●●

२

क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था !
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है !!

धूमिल पड़ती रेखाओं पर चुपके-से
प्रिय, याद तुम्हारी रंग चढ़ा जाती है !
भीतर के भरते घावों को धीरे-से
उकसाकर दिल का दर्द बढ़ा जाती है !

पावस जिन पलकों से झिरता रहता है;
तुमने बस उनको ही अपलक देखा है;
पर जो अपनी आँखें ही धो बैठा है,
क्या बतलाऊँ, वह मन कितना रोया है !!

क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था !
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है !!

मधुऋतु बीती, सुनसान पड़ी अमराई,
छिन गया कंठ ही, कोकिल गाये कैसे ?
मंजर न रहे, गुंजार नहीं अलियों का,
ऐसे में कोई गीत सुनाये कैसे ?
मन में निदाघ का ताप चढ़ा जाता है,
अंधे तट से आँधी उठती आती है;
अब कौन जगाये प्राण ! तुम्हीं जब ऊँघे,
रागिनी मौन है, राग कहीं सोया है !!

क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था !
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है !!
वह तो तुम आये थे हे मेरे चंदा !
कि समुन्दर में था ज्वार उमड़ता आया ;
लेकिन यह कैसा ज्वार आज उमड़ा है,
जब तुम न रहे, छायी मावस की माया;
बाहर के तो पत्थर भी दूब-दलों पर,
हरियाली, पानी करके ढो लेती है;
पर भीतर की करुणा का कण भी दिल पर,
पत्थर से कम करके किसने ढोया है !!
क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है !!

आभास

नीलम की थाली में घनसार-मनोरम
नक्षत्रों की कम्पित आरती सजाये,
आती है रजनी और चली जाती है;
निर्मोही, तुम वैसे फिर कभी न आये;

आते हो तो पाहुन-सा क्या आते हो!
मन को अकूल प्लावन से भर जाते हो!

तुम क्या जानो कि तुम्हारे पद-चिह्नों को
किन फूलों ने कैसे जल से धोया है!!

क्या नहीं, तुम्हें पाकर मैंने पाया था!
खोये तुम क्या, मन ही खोया-खोया है!!

२.

आज रह-रह के तुम्हारी याद आती है !

सृष्टि के संगीत में हर श्वास के आलाप मेरे
वेदना की रागिनी को बाँध अपने में न पाते ;
ताल-छंदों में नहीं संधान स्वर का हो रहा है,
प्राणलय की साधना को साध अपने में न पाते;

जिन्दगी के साज ही सब बेसुरे-से हो रहे हैं,
सुध इन्हें नाहक जगाती है !
आज रह-रहके तुम्हारी याद आती है !!

●●●●

४.

नापते निस्सीम लय के पंथ, जग के श्वास।

साध-रंजित गान संध्या के अधर से,
साधना लेकर निभृत निशि के प्रहर से,
चिर-अचल विश्वास ध्रुव-तारक अमर से,

तिमिर-आवृत पंथ में अभिसारिका नीहारिका
है पा रही कुछ प्रात का आभास !

नापते निस्सीम लय के पंथ, जग के श्वास !!

आभास

भैरवी के लोक में जगता प्रभात,
लाल हो उठते नयन के नीरजात,
निखर उठती दिग्‌धरा आनन्दस्नात,
गूँज उठते प्राण मधु-मूर्च्छित मलय में
ज्योति हँसती तिमिर का करती हुई उपहास !
नापते निस्सीम लय के पंथ, जग के श्वास !!

शूल से आकीर्ण, दुर्गम, तृषि का पथ,
बढ़ रहे, अविराम गति, जिसपर चरण श्लथ,
बाँध अनवधि को रहे दे आज इति-अथ,
सृष्टि की गति अनवरत बतला रही है—
सिद्धि का है साधना में लीन चरम विकास !
नापते निस्सीम लय के पंथ, जग के श्वास !!

●●●●

५.

अब तो मन की गाँठें खोलो !!

देखो, इन आँखों में देखो—
लोनी कालिन्दी का प्लावन !
क्या न कभी तुमको होता है
इसमें लय हो जाने का मन !
चंचल लहरों की लघुता को
दूर कूल से ही मत तोलो !
अब तो मन की गाँठें खोलो !!

आभास

नागर स्वप्न तुम्हारे मन का,
जिसकी कोई थाह नहीं है!
और यहाँ ऐसी लाचारी—
जाने की ही राह नहीं है!

आओ, राह बनाओ, उतरो,
संगम तक हमराही हो लो।
अब तो मन की गाँठें खोलो!!

चितवन से ही यह ऋजु धारा
बंकिमता से भर जाती है!
भँवरों में मन की कातरता
जाने कितना भरमाती है!

ऐसे में तुम चुप कैसे हो?
बोलो, कुछ तो खुलकर बोलो!
अब तो मन की गाँठें खोलो!!

६.

नयनों के जल-पथ में उमड़ा ज्वार है !

यह पथ अपने मे अनजाना,
नाविक, हौले ही ले जाना,

मेरी नैया की टूटी पतवार है !
नयनों के जल-पथ में उमड़ा ज्वार है !!

आभास

सपनों का है दूर किनारा,
दूर क्षितिज ही स्वप्न-सहारा,
ऊपर बादल, नीचे यह मँझधार है !
नयनों के जल-पथ में उमड़ा ज्वार है !!

मिलन सिहरता भँवर-भँवर पर,
विरह विहरता लहर-लहर पर,
कहाँ न जाने इस प्लावन का पार है !
नयनों के जल-पथ में उमड़ा ज्वार है !

७

स्वप्निल पथ पर तंद्रिल रथ से तुम क्यों आते हो !

जैसे ही आँखें लगती हैं,
रजनी की पाँखें जगती हैं,
चुपके-से आकर क्यों मेरी नींद चुराते हो !
स्वप्निल पथ पर तंद्रिल रथ से तुम क्यों आते हो !!

आभास

फिर भी यहाँ खिलेगा गुल क्या ?
कुंज बनेगा गुंज-बहुल क्या ?

काँटों को सुरभित साँसों से क्यों सहलाते हो !
स्वप्निल पथ पर तंद्रिल रथ से तुम क्यों आते हो !!

जब तक तुमको सत्य बनाऊँ,
सपनों से तुम पर छा जाऊँ,

अनुरागी दल खोल खुले नभ में खिल जाते हो !
स्वप्निल पथ पर तंद्रिल रथ से तुम क्यों आते हो !!

८

नैया तट को छोड़ चुकी है!

खड़े कूल पर तुम, बन हँसमुख,
व्यर्थ छिपाते अन्तर का दुख;
आग हिये की पानी होकर,
पत्थर का तल तोड़ चुकी है!
नैया तट को छोड़ चुकी है!!

आभास

होता जाता दूर किनारा,
दूर नयन से स्वप्न-सहारा;
घनघट पर कुछ लहर लुटाकर
धारा ही मुँह मोड़ चुकी है!
नैया तट को छोड़ चुकी है!!

उठते-गिरते श्वास-हिलोरे
डाल रहे हैं निष्फल डोरे;
तट से वंचित नाव, नये ही
तट से नाता जोड़ चुकी है!
नैया तट को छोड़ चुकी है!!

●●●●

६

रजनी के सपनों के अंबुज, कवि के नयन खुले !

सपने—जीवन की मधुमाया,
ज्योति नहीं, छाया ही छाया;
सपने—जिनमें था अबतक कवि
खोया-खोया-सा भरमाया;

डूब गये उडु-कलश गरल के, तम-हिम-विंदु-घुले !
रजनी के सपनों के अंबुज, कवि के नयन खुले !!

आभास

खुले नयन-मन उन्मन-उन्मन,
स्वयं विभा बन गये मलिन क्षण,
तिमिर-जड़ित-जग-पग-निगड़ित ज्यों
टूट गये माया के बन्धन;
ज्योतित-प्राण हुए जड़-जीवन, रज के पंथ धुले!
रजनी के सपनों के अंबुज, कवि के नयन खुले!!

यह अरुणिम क्षण प्रगति-प्रवर्तन,
सत्य यही कविता का नर्तन;
धर्म-धरा की ओर पुनः यह
रवि-कवि-नर का प्रत्यावर्तन;
प्रकटे संयुग में प्रकाश-धनु, जाग्रति-बाण तुले!
रजनी के सपनों के अंबुज, कवि के नयन खुले!!

●●●●

१०

जैसे आये, वैसे ही जाते, तो कोई बात नहीं थी !

लेकिन आये तो अनजाने,
अब अपने होकर जाते हो;
सत्य बने जीवन की आँखों,
अब सपने होकर जाते हो;

तो क्या यह सपना ही सच है ?
झूठा वह, जो सत्य बना था ?

उस दिन जो जय बन आयी थी, क्या जीवन की मात नहीं थी ?
जैसे आये, वैसे ही जाते, तो कोई बात नहीं थी !!

आभास

अब क्यों मन का पागल पंछी
दर्दीले गाने गाता है !
नयनों का लोना सूनापन
मरु-उर पर मधु बरसाता है !

उस दिन तो बिलकुल चुप था वन,
दल भी हिलना भूल गये थे,
अंबर बस बदराया-भर था, यों, कोई बरसात नहीं थी !
जैसे आये, वैसे ही जाते, तो कोई बात नहीं थी !!

चारों ओर अँधेरा घुप है,
मन मावस की रात बना है;
जीवन पर काले अंबर का
घेरा कितना आज घना है !

वह भी तो कोई निशि ही थी,
चाँद बने जब तुम आये थे ;
धोयी थी वह भी, पर ऐसी आँखों-धोयी रात नहीं थी !
जैसे आये, वैसे ही जाते, तो कोई बात नहीं थी !!

●●●●

११

मुग्ध धरा ! मुग्ध गगन !!

अखिल विश्व जाग उठा,
तिमिर-त्रास भाग उठा,
एक मदिर तान लिये
एक मधुर राग उठा;
भरे भैरवी के स्वन,
हँस उठे निकुंज-नयन;
खनक उठा ऊषा की—
किंकिणियाँ खनन-खनन !
मुग्ध धरा ! मुग्ध गगन !!

आभास

आज एक नवोल्लास,
मन-मन में मधुर आस,
प्राणता नवीन लिए
फूल रहे श्वास-श्वास;

पग-पग पर नयी राह,
मग-मग में नयी चाह;
धरती पर नाच रही—
नभ की नर्तकी किरण!
मुग्ध धरा! मुग्ध गगन!!

पाँखों के बजे तार,
हिल उठी मलय-बयार;
मंजरित लता-वितान,
पद्म खिल उठे अपार;

जीवन में ज्योति जगी,
मधु-रस में प्रकृति पगी;
थिरक उठे जड़ता पर—
कविता के कलित चरण!
मुग्ध धरा! मुग्ध गगन!!

●●●●

१२

गा री पपिही, कजरी धुन में, अपने पी के गीत !

धरती सोंधी साँस ले रही,
उन्मन वन का मोर;
ये कजरारे फिर घिर आये,
देख गगन की ओर;

आज बहुत दिन पर बहुरे हैं, तेरे मन के मीत !
गा री पपिही, कजरी धुन में, अपने पी के गीत !

आभास

बीते गिन-गिन ऊमस के दिन,
नींद-वियोगिन रात;
मधुर मिलन की छवि बन छायी
अंबर पर बरसात;

भूल रही तेरी पलकों पर भूले घन की प्रीत!
गा री पपिही, कजरी धुन में, अपने पी के गीत!!

स्वप्न नहीं यह, सत्य, सुहागिन!
तप तेरा फलवान;
पिय तेरे पग पर झुक आये,
फिर यह कैसा मान?

भर सुर में उर, बोल, सुरीली! समझ समय की रीत!
गा री पपिही, कजरी धुन में, अपने पी के गीत!!

●●●●

१३

बोझिल पलकों का व्योम बरसता ही आया !
पागल प्राणों का दाह, मगर कब बुझ पाया !!

अंबर के उन्मन मेघ-नयन क्या बरस गये !
पावस की प्यासी भू का कण-कण सरस गये !
पर प्यास बुझा पाये भी क्या, पागल मन की ?
पी-पी रटती रह गयी टँगी खग की काया !
बोझिल पलकों का व्योम बरसता ही आया !
पागल प्राणों का दाह, मगर कब बुझ पाया !!

आभास

बिहँसीं कितनी कलियाँ सौरभ के दृग उघार,
मलयज की लहरों का रज से कर मधु-सिंगार,
पर तृप्त हुई कब गंध-पिपासा मधुकर की ?
बन-बन भरमा गुंजार, दलों पर भरमाया
बोझिल पलकों का व्योम बरसता ही आया !
पागल प्राणों का दाह, मगर कब बुझ पाया

कितनी सरितायें लघु-लहरों का भार लिये,
जातीं सागर के पास, तरल उपहार लिये,
पर उच्छल लहरों के गहरे अन्तस्तल का
कब दाह मिटा पायी सरिताओं की माया
बोझिल पलकों का व्योम बरसता ही आया !
पागल प्राणों का दाह, मगर कब बुझ पाया .

●●●●

१४.

जीवन को आलोकित कर दो !
ज्योति-नयन ! मानव के मन को
अनुरागी किरणों से भर दो !!

मोह-तिमिर-मग पर मति की गति
पंगु बनी, पाकर अनुचित यति ;
विद्युत्-चरण करो प्राणों को,
जड़ता को जीवन का वर दो !
जीवन को आलोकित कर दो !!

आभास

टूटे अचल-पुरातन-कारा,
छूटे नूतन चेतन-धारा,
गिरि-प्रपात की जिज्ञासा का
सागर के स्वर में उत्तर दो!
जीवन को आलोकित कर दो!!

तम-तापित विज्ञान-कमल-मुख
विकसित हो, पाकर प्रकाश-सुख;
निरानन्द भव के मरन्द को
चिदानन्द-अनुभाव-अमर दो!
जीवन को आलोकित कर दो!!

●●●●

१५.

विलग हुआ मन उन्मन-उन्मन आज नहीं लगता है !
मन आज नहीं लगता है !!

आतीं याद बहुत-सी बातें,
वे बीते दिन, बीती रातें;

सुधि में डूबा आकुल अन्तर
बेसुधि में पगता है !
मन आज नहीं लगता है !!

आभास

आँखें प्यासी हैं पानी में,
जी अकुलाता है वाणी में;
जाने कौन हृदय में मेरे
रह-रहकर जगता है!
मन आज नहीं लगता है!

अपनेपन की बात पराई,
पतझर में डूबी अमराई;
अपना मन अपने जादू से
अपने को ठगता है!
मन आज नहीं लगता है!

●●●●

१६.

दूर तुमसे जा रहा हूँ, जा रहा हूँ दूर !

जी मनाये भी न माने,
लौटना कब हो, न जाने !
या पता क्या, यह नियति ही
लौटकर फिर दे न आने !

चाहकर भी रुक न पाता,
हाय, कैसी बेबसी है !

क्या बताऊँ, किस तरह मैं हो रहा मजबूर !
दूर तुमसे जा रहा हूँ, जा रहा हूँ दूर !!

प्राण कातर हो रहे हैं,
मूक होकर रो रहे हैं;
भेद खुलने के प्रथम,
खुद को तुम्हीं में खो रहे हैं;
क्या पता, तूफान में क्या
हो, कहाँ मिल जाय आँधी,
और तब, पतवार ही हो जाय चकनाचूर!
दूर तुमसे जा रहा हूँ, जा रहा हूँ दूर!!

आखिरी यह है दिवाली,
फिर कहाँ यह रात आली!
आज ही के बाद होगी
आरती से शून्य थाली;
चेतना की लौ लगा दो
मूर्त्त मन की वर्तिका में!
तुम हिये के सौध को दो दग-दिये से पूर!
दूर तुमसे जा रहा हूँ, जा रहा हूँ दूर!!

●●●●

१७

क्या यह मन इतना प्यारा है?

तुम अपने में जिसे जुगोये
रहते हो ज्यों खोये-खोये,
नाग बने जगते रहते हो!—
क्या यह धन इतना प्यारा है?
क्या यह मन इतना प्यारा है?

खग की अपलक चितवन साधे,
जिसको जोह रहे टक बाँधे!
कंठ चढ़ा रहता 'पी' का स्वर!—
क्या यह घन इतना प्यारा है?
क्या यह मन इतना प्यारा है?

फिर भी तुम मंजर ले आये!
बरबस मेरे बसन रँगाये!
फिर पंचम में टेर लगाई!—
क्या यह बन इतना प्यारा है?
क्या यह मन इतना प्यारा है?

१८

होलिका जली कि जल उठे सकल विराग !!
आज धधक उठी आग !!
जला शिशिर जीर्णगात,
जले सकल शुष्क पात,
जली जरा संवत् की
अंतिम जर्जरित रात !
कल नवीन वर्ष हर्ष का होगा,
चेतना नवीन उठी जाग !!
धधक उठी आग !!

आभास

सुलग रहे कष्ट-क्लेश,
बदल रहा प्रकृति-वेश,
और आज करवटें
बदल रहा समस्त देश;
होलिका जली कि उठी लाल लपट !
या कि जल उठा नया चिराग !!
धधक उठी आग !!

उड़-उड़कर ज्योतिरंग
बनते बहुरंग व्यंग;
जीवन की जड़ता पर
जाग रही नव उमंग;
कल नवीन वर्ष का नया प्रभात !
गा रहा वसन्त फाग-राग !!
धधक उठी आग !!

●●●●

१६

सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे,
मैं सधा राग भी गा न सका जीवन का !

वह टूट गया मेरे होंठों तक आते
साकी ने हँसकर दिया मधुर जो प्याला;
मैं झूम न पाया अपनी मदहोशी में,
मैं हो न सका मस्ती पीकर मतवाला;
कोकिल की कूकों पर रीझी न बसन्ती,
आ सका न कुसुमाकर उजड़े मधुवन का !
सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे,
मैं सधा राग भी गा न सका जीवन का !!

मैं सुन न सका अवरुद्ध कंठ की वाणी,
मैं देख न पाया जलते उर की ज्वाला;
चढ़ सके न चरणों पर प्रसून प्राणों के,
दे सका न मैं नयनों की मुक्ता-माला:
तुम रस की गगरी भर न सकीं पनघट पर
फिर सज न सका शृंगार अलस यौवन का!
सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे,
मैं सधा राग भी गा न सका जीवन का!!

मैं पुरुष समझ पाया न इशारे तेरे,
जब प्रकृति-नटी बन तुमने मुझे बुलाया;
सिर हिला न पाया मैं गीतों के सम पर,
उपवन में जब तुमने आमंत्रण गाया;
इस प्रलय-कुंज में मलयज की साँसों से
हो सका न स्वर-संचार नवीन सृजन का!
सखि, टूट गये हैं तार बीन के मेरे,
मैं सधा राग भी गा न सका जीवन का!!

●●●●

२०

आँख-मिचौनी की गति-यति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !

तट को छूकर; पर फिर-फिरकर,
अपने ही घर में घिर-घिरकर,
अपने ही ज्वारों-भाटों में—
भूला अपनी लीलाओं पर;
बाहर शीतल, भीतर जलता,
आँधी के पलने में पलता,
अपने ही जीवन की गति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !
आँख-मिचौनी की गति-यति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !!

आभास

निज अरूप में रूप बनाये,
नीलाम्बर के जाल बिछाये,
अपने ही निस्सीम वलय पर
क्षितिज-बंध के स्वांग रचाये,
खोया अपने सूनेपन मे,
भरमाया अपने ही स्वन में,
अपनी ही रति और विरति में, मैं अपने को खोज रहा हूँ !
औस-मिचौनी की गति-यति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !!

उषा, दिवा, संध्या, तम-छाया,
क्रम-क्रम से ऋतुओं की माया,
अथ-इति-अवधि बना अनवधि में,
अपने ही भ्रम में भरमाया,
चिर नूतनता के अभिनय में,
चिर-पुराण अविनश्वर लय में,
अपने से अनजान, नियति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !
औस-मिचौनी की गति-यति में मैं अपने को खोज रहा हूँ !!

●●●●

२१

न कह पाते; न सह पाते; कि है कुछ बात ही ऐसी !
समझते जीत बाजी की, मिली है मात ही ऐसी !!

नहीं हैं आज तारे भी, गिना करते थे हम जिनको,
कि काटे कट नहीं पाती, घिरी है रात ही ऐसी !!

तड़पता है तड़ित् मन में, नयन से हैं टँगे बादल,
लगी है आग पानी में, हुई बरसात हाँ ऐसी !!

किया करते हैं हम चर्चा, महज मजबूरियों की हाँ,
कि सहकर भी न सह पाते, लगी है घात ही ऐसी !!

●●●●

२२

कैसा यह संगीत रे !

युग-युग से साँसों की लड़ियाँ
बनती जातीं जिसकी कड़ियाँ,
कैसा है यह सृष्टि-पुरातन का नूतनतम गीत रे !
कैसा यह संगीत रे !!

लय में जितनी यति आती है,
उतनी ही यह गति पाती है,
कैसी है यह अमर वेदना की रसधारा स्फीत रे !
कैसा यह संगीत रे !!

उर के तार निरंतर बजते,
जीवन-राग सुरों में सजते,
सम देकर भी जिन्हें आज तक मरण न पाया जीत रे !
कैसा यह संगीत रे !!

२३

सारी रात कटी दृग में
तुम निठुर ! न आये !!

निविड़ निशा में, धीरज खोकर,
ज्वार-जलधि की प्रलय-लहर पर,
मैंने छोड़ी नाव, बिना
पथ-इंगित पाये !
सारी रात कटी दृग में
तुम निठुर ! न आये !!

किन्तु तिमिर में जब अनजाने,
मेरी नाव लगी भरमाने,
काम तुम्हीं आये, आँधी
में दीप जलाये !
सारी रात कटी दृग में
तुम निठुर ! न आये !!

× × × ×

अब जो तट पर डूब रही है,
प्रिय, मेरी यह नाव वही है;
कहीं तुम्हारा करुणांचल
भी हँसा न जाये !
सारी रात कटी दृग में
तुम निठुर ! न आये !!

२४

राह मिली तो मंजिल को छू लेने का आभास मिल गया !

चाहों के चौराहे पर जब
राही ने अपना पथ पाया,
आलोकित हो उठा नयन-नभ,
विभ्रम-जाल स्वयं भरमाया;
रोड़ों ने कब राह न रोकी ?
निर्झर का अभियान रुका कब !
जीवन को अविराम प्रगति का गौरवमय उल्लास मिल गया !
राह मिली तो मंजिल को छू लेने का आभास मिल गया !!

आभास

बर्फीली साँसों में जिसने
बाँध रखी है जलती आशा,
बँध पायेगी जीवन की भी
उसके ही स्वर में परिभाषा;
जिसने ध्रुव को लक्ष्य बनाया,
दिग्भ्रम उसके लिए नहीं है;
साध हुई तन्मय कि सिद्धि का सधा हुआ विश्वास मिल गया !
राह मिली तो मंजिल को छू लेने का आभास मिल गया !!

नयन-लौंक धरकर जब काई
प्राणों के प्रान्तर में आया;
आँधियाली ने लाली पायी,
पात-पात ने स्वप्न गँवाया;
इस अनन्त ज्योतिर्मयता में
सान्त तमिस्रा का भय कैसा ?
रवि-चुम्बित जीवन-सरोज को चेतनशील विकास मिल गया !
राह मिली तो मंजिल को छू लेने का आभास मिल गया !!

२५

खुल गया असित अवगुंठन, खुले पलक-पाटल,
जब तेरे रश्मि-चरण का कुछ आभास मिला !

मधुकरियाँ लगीं मचलने मुग्ध पुतलियों-सी,
इकरंगा होने लगा नीलिमा का निचोल;
सिन्दूर-राग से दमका प्राची का सुहाग,
कूजन बन गूँज उठे प्राणों के मूक बोल;
सिहरा समीर साँसों का, पुलकित पात-पात,
अँगड़ाई ली धरती ने, बिखरे अंगराग;
तेरे मरकत-पथ की हँसती हरियाली पर
हिम-नयन बिछाने का सकरुण विश्वास मिला !
खुल गया असित अवगुंठन, खुले पलक-पाटल,
जब तेरे रश्मि-चरण का कुछ आभास मिला !!

आभास

शब्दों के अंबर में गूँजा भैरवी-गान,
चेतन-रस लगा मचलने नीरज-नयनों में;
मधु-गंध-अंध हो उठे राग-रस के निकुंज,
रूपाभा लगी निखरने स्वप्निल-शयनों में;
कर-परस सिहरने लगा नीप के अंगों पर,
तत्त्वों ने लुटा दिया अपना अस्तित्व-मान;
जीवन्त हो उठी जड़ता में निगड़ित संसृति,
गति पाकर जीवन की लय को उल्लास मिला !
खुल गया असित अवगुंठन, खुले पलक-पाटल,
जब तेरे रश्मि-चरण का कुछ आभास मिला !!